**वैदिक नीति और धर्मशास्त्र**

डॉ. गमीरसिंह नारसिंह बारीया\*

**क्षारसंक्षेप:**

 हमारे वैदिक धर्मशास्त्रों मे नीतिमत्ता का उच्च धोरण प्ररथापित किया गया है | मनुस्मृति निर्देशित नीतिशास्त्र मे राजा का कर्तव्य, प्रजा का कर्तव्य, हरेक नागरिक का कर्तव्य, व्यापारी का कर्तव्य, किसान का कर्तव्य,ब्राह्मण का कर्तव्य,शूद्र का कर्तव्य तथा जगत के सभी पहलुओ का नीतिशास्त्र मे वर्णन है, जिस मे दंडनीति भी शामिल है |हमारे वैदिक धर्मशास्त्रों उपदेथों से भरे हुऐ है |अच्छे कर्मो का फल अच्छा होता है, बुरे कर्मो का फल बुरा होता है | इस लिये हमारा आचरण श्रेष्ठ होना चाहिये |महाभारत मे कौरवो सदा परपीड़न मे मग्न रहते थे फिर भी युधिष्ठिर आदि पांडवो ने उनके प्रति भी द्वेषपूर्ण व्यवहार नहीं किया| हमारा धर्मशास्त्र हमे यही शिखाता है | यदि दूसरा व्यक्ति बूरा करे तो भी उसके लिये बूरा नहीं सोचना चाहिये | भीष्म पितामह का व्यक्तित्व भी ऐसा ही था | अपनी जीह्वा से किसी की बुराई नहीं होनी चाहिये | भगवद्गीता, मनुस्मृति, स्मृतियां,महाभारत आदि हमारे धर्मग्रन्थो मे यही नीति हमे शिखाई गई है | यदि हम उसका पालन करें तो दुनिया के सभी कष्ट अपने आप दूर हो जायेँगे | यह पूरे प्रलेख मे यही वर्णित किया गया है।

चाविरूप शब्द: वैदिक,धर्मशास्त्रों,नीतिमत्ता,दंडनीति,संपदा ।

**प्रस्तावना:**

 हमारे धर्मशास्त्रों हमारी,वैदिक संपदा है | धर्मशास्त्र हमें सच्चा राह दिखाते हुए,ऊर्ध्व गति की और ले जाता है | जब पूरा विश्व भौतिक संपति के पीछे अंधी दौड लगा रहा है,हमारे धर्मशास्त्र हमें नीतिमय जीवन की राह दिखाते हुए, दिव्य जीवन की मंजिल तक पहुँचाते है | भारत मे हमेशां वसुधौव कुटुम्बकम की शोच रही है | पूरा विश्र्व हमारा परिवार है, यही शोच के साथ मानव कल्याण एवं विश्र्व कल्याण के पथ पर जीना शीखाया है, नीतिमय जीवन ही सच्चा जीवन है, यही संन्देश हमारे धर्मशासत्रो ने दिया है |वैदिक नीति ने हमें क्या करना है, क्या नहीं करना है, उसका उपदेश देते हुए नीतिमत्ता के उच्च मानक प्रस्थापित किये है | नैतिक आचरण का मानदंड या मानक, गति के प्रथम सोपान पर ऐक्य (आत्मा - परमात्मा का एकत्व) - अदद्वैत है, पर कुछ जीव उस कक्षा तक पहुँचे नहीं है|

\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_\_

\* डॉ. गमीरसिंह नारसिंह बारीया , एम. ए., पीएच.डी. संस्कृत वेदांतशास्त्र

बड़े तौर पर कर्म करते समय एक प्रश्र्न पूछते है - क्या यह कर्म हमे एकत्व की ओर ले जाता है ? यदि प्रश्र्न का उतर 'हां' है तो कर्म या आचरण योग्य है | यदि'हां' नहीं है तो फिर कर्म या आचरण अयोग्य है | इसी तरह नीतिशास्त्र एक-दूसरे की साथ एवं हमारी इर्द गिर्द की परिस्थिति की सुसंवादिता के साथ जीना शिखाता है |जब भगवदगीता में श्री कृष्ण दैवी एवं आसुरी संपति की बात करते है (अध्याय १६) तब हम देख सकते है की जो संपदा एकता - अद्धैत को संवादित करने के लिये प्रेरित करती है यह दैवी संपदा है | दूसरी ओर जो संपदा पृकन्कत्व की और प्रेरित करती है वह आसुरी संपदा है |

दैव-असुर संपदा:

अभयं सत्व संशुद्धि ज्ञानयोग त्ववस्थिति : |

दानं दमश्व यज्ञश्व स्वाध्यायस्तव आर्जवम||

 भगवादगीता (१६-१ )

 भय का संपूर्णत: अभाव होना, अन्तकरणा पूर्णरूप से निर्मल होना, तत्वज्ञान के अर्थ में ध्यानयोग में निरंतर द्रठ स्थिति होना, सात्विक दान देना, इंद्रियों को अपने वश में रखना, भगवान, देवता एवं बड़े-बुजुर्ग की पुजा करना एवं अंग्निहोत्र आदि उतम कर्मो का आचरण करना, वेदशास्त्रों का पठन-पाठन, भगवान का नाम स्मरण एवं उनके गुणो का कीर्तन करना, स्वधर्म-पालन के लिये कष्ट को भी सेहन कर लेना, तथा शरीर-इंद्रियों सहित अन्त:करण में ऋजुभाव होना चाहिये |

सत्यं वदं,प्रियं वदं:

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्याग : शान्तिर पैशूनम |

द्या भूतेष्वलोलुप्त्व्म मार्दवं ह्विरचापलम्||

(भगवद्गीता १६-२)

 दूसरे श्लोक में कहा गया है की, मन, वचन या शरीर से किसी प्रकार का किसी को कष्ट नहीं देना चाहिये, यथार्थ एवं प्रिय बोलना चाहिये, अपने पर अपकार करने वाले पर भी क्रोध नहीं होना चाहिये,कर्म करते समय कर्तापणा का भाव नहीं होना चाहिये | अभिमान का त्याग करना चाहिये |अंत्त:करण की उपरति यानि कि चित की चंचलता नहीं होनी चाहिये | किसी कि निंदा नहीं करनी चाहिये |सर्व भूत-प्राणी पर द्या भाव रखना चाहिये |ईन्द्रीयों का विषयों की साथ संयोग होने पर भी विषयो की ओर आशक्ति नहीं होनी चाहिये | मृदु स्वभाव होना चाहिये। लोक एवं शास्त्र की विरूध्ध आचरण में लज्जा होनी चाहिये | व्यर्थ चेष्टा नहीं करनी चाहिये।

दैवी संपदा के लक्षण :

तेण: क्षमा धृति: शौचमध्रोंहों नातिमानिता |

भवति सम्पदं दैविमभिणतस्य भारतं||

(भगवतगीता १६-३ )

 हे भारत, त्रेण, क्षमा बाह्यशुद्धि,किसी के प्रति शत्रुभाव नहीं होना, अपने में पुण्यता का अभिमान नहीं होना - ये सब दैवी संपदा की साथ जन्मे हुए व्यक्ति के लक्षण है |

 तिसरे श्लोक में कहा गया है की दंभ,घमंड, अभिमान, क्रोध, कठोरता,एवं अज्ञान ये सब आसुरी संपदा की साथ जन्मे हुए व्यक्ति के लक्षण है |

सर्व का आत्मा में दर्शन:

सर्व मात्मनि संपश्येत्सच्यास एवं समाहित: |

सर्व ध्रात्मनि संपश्यत्र धर्मे कुरुते मन: |

आत्मैव देवता सर्वा : सर्वमान्मन्य वस्थिण्म्||

 एकाग्र मन (चित्त) द्धारा व्यक्ति को सत एवं असत - सर्व का दर्शन आत्मा में करना चाहिये, क्योंकि इस तरह सर्व का आत्मा में दर्शन करने से उस (व्यक्ति) का मन अधर्म कि ओर नहीं जाता है | आत्मा ही सर्व देवता स्वरूप है | सबकुछ आत्मा में स्थित हुआ है, रहा हुआ है।

(मनुस्मृति ११८-११९)

एवं य: सर्वभूतेषु पश्वत्यात्मानमातना|

स सर्वमतामेत्य ब्रह्याज्येती पर पवम्||

(मनुस्मृति १२५)

 जो (व्यक्ति) इसी तरह आत्मद्धारा (खुद) सर्व भूतो में आत्म का दर्शन करता है, वह (व्यक्ति) सर्व के समत्व, समानता का ज्ञान प्राप्त करता है एवं ब्रह्मारूपी परम पद प्राप्त करता है |

यदत्यैर्विहतं नच्छेदात्मन: कर्म पुरुष: |

न तत्परेषु कुर्वीत मानवप्रिय मात्मन: |

यदवात्मनि चेच्छेव तत्परायाचि चिन्तयेत ||

(महाभारत-शांतिपर्व २०३ - २०, २१-२३)

 मनुष्य को दूसरों द्धारा अपने लिये किया हुआ, अपने को प्रिय न हो ऐसा कर्म, उसको दूसरों के प्रति नहीं करना चाहिये | जो कर्म या वर्ताव अपने ही ओर हो, ऐसा इच्छता हो, ऐसा ही दूसरों के लिये खुद करे, इसकी ओर चिन्तन करना चाहिये |

यद्त्येषा हितं न स्वाधात्मन: कर्म पौरुषम |

अपवयेत वा येत न तत्कुर्यात्कथन ||

(महाभारत, शान्तिपर्व १२४,६७)

 जिससे दूसरों का हित न हो ऐसा कर्म व्यक्ति को नहीं करना चाहिये, या जिससे अपने को लज्जा- शर्म का अनुभव होता हो, ऐसा कर्म व्यक्ति को नहीं करना चाहिये |

अतो यवात्मानोंड़पथ्य परेषा न तवाचरेत |

(याज्ञवलक्यस्कृति रू- ६५)

 जो अपनों के लिये अपश्य - अहितकारी हो ऐसा कर्म व्यक्ति को दूसरों के संदर्भ में, दूसरों के बारे, में भी नहीं करना चाहिये |

 मनस्मृति में गुरु का शिष्य के प्रति, पिता का पुत्र के लिये कर्तव्य, पुत्र का पिता के लिये कर्तव्य, वारिष्ठों के संबंध में अनुलक्षित,कनिस्ठों के संबंध में अनुलक्षित, समवयस्को - समकक्षों के साथ संबंध में अनुलक्षित, आदि पहलू पर विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है ।

विदेशनिती:

 कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दंड नीति सहित हरेक व्यक्ति के कर्तव्य का जिक्र किया गया है। एक देश का अपने पदोशी देश के साथ संबंध, देशो में किस तरह मित्राचारी करनी चाहिये उसका ब्यौरा दिया गया है। उदाहरण के तौर पर भारत को पाकिस्तान को छोड़ कर अफघानिस्तान, एवं चीन को छोडकर जापान के साथ मीत्राचारी बढ़ानी चाहिए। दुश्मन का दुश्मन मित्र होता है, यह राजनीति, कुटिल नीति कौटिल्य ने दर्शाई है, जो आज भी उतनी ही संदर्भ रखती है । कौटिल्य की विदेशनिती पूरे विश्व में सबसे पुरानी है एवं उतनी ही ग्राह्य है।

समापन:

 इस तरह वैदिक नीति हमें सद - असद का विवेकभान करती है। जो हमे अच्छा न लगता हो ऐसा वर्ताव हमे भी किसी और के लिये नहीं करना चाहिए।यदि व्यक्ति यह सद -असद का विवेकभान प्राप्त करले तो विश्व के आधे कष्ट अपने आप दूर हो सकते है|हम चाहते है की दूसरी व्यक्ति हमारी ओर अच्छा वर्ताव करे, पर अपना कर्म करते समय यह भूल जाते है की यह कर्म दूसरों को हानिपहुंचाने वाला है | नैतिक्ता का उदेश्य सभी व्यक्तिओं के कल्याण को सुनिश्चित करना है | किसी भी कर्म करते समय योग्य-अयोग्य का विचार किया जाय, यही समय की मांग है | यहि वैदिक नीति हमें शिखाती है |

**संदर्भ ग्रंथसूची:**

 (1) श्रीमद भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर।

 (2) महाभारत : वेदव्यास।

 (3) याज्ञवल्क्य स्मृति।

 (4) मनुस्मृति - आचार्य मनु।

 (5) नीतिशतक।